प्रतिक्रमण : आत्मविशुद्धि का अमोघ उपाय

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.

प्रतिक्रमण की साधना आत्म-विशुद्धि की अमोघ साधना है। आज व्यक्ति बाह्यशुद्धि के प्रति जितना सजग है उतना ही आन्तरिक शुद्धि के प्रति असजग। स्थानकवासी रत्नसंघ के अष्टम पट्टधर आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. ने प्रतिक्रमण विषयक अपने इस प्रवचन में व्यक्ति को आन्तरिक शुद्धि के प्रति सजग बनने की महती प्रेरणा की है। १७ सितम्बर २००६ को बंगारपेट में फरमाये गए इस प्रवचन में प्रतिक्रमण का सर्वांग विवेचन हुआ है। प्रवचन का संकलन श्रावकरत्न श्री जगदीश जी जैन के द्वारा किया गया है। -सम्पादक

तीर्थंकर भगवान् महावीर ने आचारांग से लेकर दृष्टिवाद तक अंगशास्त्र में जितने भी उपदेश दिये, जितनी वागरणाएँ की, वे सब आत्मधर्म को लेकर की, आत्मविशुद्धि के लिये की। उनका कथन है- आत्मा के अन्दर जो वासनाएँ-विकार, जो कर्म-मैल हमारे अपने अज्ञान और असावधानी से अथवा प्रमाद से प्रविष्ट हो गये हैं, उन्हें शुद्ध कर भीतर सोये हुए ईश्वरत्व को जगाने की साधना 'सामायिक' और 'प्रतिक्रमण' है। वीतराग वाणी कहती है- मानव तेरे भीतर पशुत्व, असुरत्व, दानवत्व की जो वृत्ति आ गई है, वह तेरी अपनी स्वभावजन्य नहीं, इधर-उधर बाहर से आई है, यह तेरा मूल स्वरूप नहीं है। आध्यात्मिक दर्शन कहता है- हे साधक! तू घनघोर घटाओं से घिरे हुए, बादलों में छुपे हुए सूर्य के समान है। तुझे बाहर से भले ही बादलों ने घेर रखा हो, पर तू अन्दर से तेजस्वी सूर्य है, सहस्ररश्मि ही नहीं, अनन्त रश्मि है, पहले था और अनन्त काल तक सूर्य ही रहेगा। ये जो तेरे ऊपर कर्मों के बादल छा गये हैं, वासनाओं की काली घटाएँ आ गई हैं, उसी के कारण तेरा अनिवर्चनीय तेज, परम प्रकाश लुप्त हो गया है, तुझे उन घटाओं को छिन्न-भिन्न करना होगा। ऐसा करने से तेरा सहज स्वाभाविक तेज और प्रकाश जगमगा उठेगा। अतः ''उट्ठिए नो पमायए'' उठ! प्रमाद मत कर और अपने आपको हीन, दीन, दुराचारी मत समझ। हर अशुद्धि को दूर करने का उपाय है।

व्यवहार जगत् में मैले कपड़े सोड़े और साबुन से धोकर, रूई की धुनाई कर, बर्तन को मांजकर, सोने-चाँदी आदि धातु को तपाकर, गटर के पानी को फिल्टर कर, कमरे को झाड़-बुहार कर, धान को हवा में बरसा कर, रस्सी (मवाद) को औषधि से सुखाकर, घी को गर्म कर, पेट को जुलाब लेकर जैसे शुद्ध किया जाता है, इसी तरह पाप कर्मों से मलिन बनी हुई आत्मा को, आलोचना और प्रतिक्रमण के पश्चात्ताप में तपाकर शुद्ध किया जा सकता है। जितना अधिक पश्चात्ताप और खेद होगा, उतनी ही अधिक अशुद्धि दूर होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः आज प्रतिक्रमण को लेकर कुछ विचारणा करते हैं, क्रमण शब्द का अर्थ है- चलना और प्रतिक्रमण का अर्थ है लौटना। शास्त्र में इसे आवश्यक के नाम से कहा गया है 'अवश्यं कर्त्तव्यम् आवश्यकम्'। साधु-साध्वी एवं श्रावक-श्राविका रूप चारों संघ को दोनों समय अवश्य करना चाहिये, अतः इसे आवश्यक कहा गया है। आर्यक्षेत्र भारतवर्ष की विभिन्न धर्म-परम्पराओं में आत्मशुद्धि हेतु संध्या कर्म, प्रतिक्रमण, पश्चात्ताप, तोबा के रूप में यह साधना मिलती है। वीतराग वाणी में प्रतिक्रमण का शाब्दिक अर्थ है- वापस लौटना, विभाव से स्वभाव में आना, बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी बनना, प्रमाद की स्वीकृति अर्थात् पापाचरण की आलोचना कर मर्यादा में वापस आना। सरल शब्दों में- 'अपने गुणों में जो अतिक्रमण हुआ है, उससे प्रतिक्रमण करना, वापस लौटना। यति वृषभाचार्यकृत तिलोयपन्नत्ति और हारिभद्रीय आवश्यक सूत्र वृत्ति अध्ययन ४ गाथा १२३३-१२४२ में प्रतिक्रमण के ८ पर्यायवाची नाम दिये गये हैं- १. **प्रतिक्रमण**- आत्मशुद्धि के क्षेत्र में लौटना २. **प्रतिसरण**- संयम-साधना में अग्रसर होना ३. **प्रतिहरण**- अशुभ योगों का त्याग करना ४. **धारणा**- शुभ भावनाओं को धारण करना ५. **निवृत्ति**- अशुभ भावों से निवृत्त होना ६. **निंदा**- अपने पापों की आत्मसाक्षी से निन्दा करना ७. **गर्हा**- गुरु साक्षी से पापों को प्रकट करना ८. **शुद्धि**-व्रतों में लगे दोषों की शुद्धि करना।

वैदिक परम्परा में इसे संध्या कर्म के नाम से कहा गया है। यजुर्वेद में उच्चरित मंत्र का अर्थ करते हुए कहा है- मैं आचरित पापों के क्षय के लिये यह उपासना सम्पन्न करता हूँ; मेरे मन, वाणी और शरीर से जो भी दुराचरण हुआ, उसका मैं विसर्जन करता हूँ। तो पारसी धर्म के प्राचीनतम ग्रन्थ 'खोरदेअवस्ता' में कहा गया है- मैंने मन से जो बुरे विचार, वाणी से तुच्छ भाषण और शरीर से जो घृणित कार्य किया, उन सबके लिए पश्चात्ताप करता हूँ, अपराध से अलग होकर पवित्र होता हूँ। इसी प्रतिक्रमण को ईसाई धर्म में 'कन्फेशन' अर्थात् पाप की स्वीकृति कर, आचरित पापों को धर्मगुरु, पोप या पादरी से कहकर प्रायश्चित्त करने का विधान है। बौद्ध धर्म में- प्रतिक्रमण के प्रतिकर्म, प्रवारणा और पापदेशना ये नाम मिलते हैं। प्रवारणा की तिथि पर भिक्षु-भिक्षुणी व संघ के सदस्य सभी इकट्ठे होते हैं और आचार के नियमों का पाठ बोलते हैं, फिर भिक्षु से पृच्छा की जाती है, नहीं बोलने पर संघ से पृच्छा की जाती है- इस आचार का किसी ने भंग तो नहीं किया? किसी की सूचना नहीं मिलने पर शिकायत करने की पृच्छा की जाती है, वह नहीं मिलने पर 'निर्दोष कहकर' आगे का नियम पढ़ा जाता है- यदि किसी ने भंग किया हो तो उसे यथोचित प्रायश्चित्त दण्ड दिया जाता है। इस्लाम धर्म में महात्मा अबूबकर ने कहा है- तौबा, खेद, पछतावा (प्रायश्चित्त) आदि छः बातों से पूरा होता है- १. पिछले पापों पर लज्जित होने से २. फिर पाप न करने का प्रयत्न (प्रतिज्ञा) करने से ३. मालिक की जो सेवा छूट गई हो, उसे पूरा करने से ४. अपने द्वारा हुई हानि का घाटा भर देने से ५. हराम के खाने से- जो लोहू और चर्बी बढ़ी है, उसे तप से धुला डालने से ६. शरीर ने पापों से जितना सुख उठाया है, सत्य धर्म में उसे उतना ही दुःख देने से तौबा होता है। प्रतिक्रमण का आंग्ल भाषा में साम्य रखने वाला एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द है About Turn (अबाउट टर्न) अर्थात् "जिस स्वभाव से बाहर निकल गये थे, वापस लौटकर वहीं आ जाइये", "जहाँ से चले थे, लौट आइये" यही प्रतिक्रमण है।

बाहरी संसार असीम है, अनंत है। जब हमें किसी लक्ष्य का ज्ञान हो जाता है तो हम उस ओर क्रमण अर्थात् पहुँचने का प्रयास करते हैं। लक्ष्य लेकर चलते हुए भी शक्ति, सामर्थ्य, पुरुषार्थ पूरा नहीं करने के कारण भटक जाते हैं और कभी मार्ग की दुरूहता, आने वाले कष्ट और परीषह से कृत्य के साथ अकरणीय भी कर लेते हैं और ये अकरणीय अतिक्रमण हमें अशान्ति, अस्थिरता देते हैं। अशान्त मन पाप में प्रवृत्ति करता है, वहाँ से वापस लौटना प्रतिक्रमण है। हम अनेक भवों के यात्री हैं, कई जन्मों से यात्रा करते आ रहे हैं, कितने ही सावधान होकर चलने पर भी कहीं वासना-विकार की, तो कहीं क्रोध-लोभ की, तो कहीं मोह-माया की, भूल की धूल लग ही जाती है और हमारी चारित्र एवं नियम रूपी चदरिया मैली हो जाती है। भले ही हम कितने ही संभल कर चलें, संसार की कहावत है-

काजल की कोटड़ी में लाख हुँ सयानो जाय।
काजल की एक रेख, लागे पुनि लागे है।।

इसी भूल की धूल का आत्मनिरीक्षण कर, विभाव से स्वभाव में आने को प्रतिक्रमण कहते हैं।

ये भूल से लगे साता-सुख के शल्य रूप काँटे, हमें साधना पथ पर तेज दौड़ने नहीं देते। कहावत है-

डाढाँ खटके कांकरो, फूस जो खटके नैन।
कह्यो खटके आकरो, बिछड्यो खटके सेन।।

जैसे दाँत के बीच में कंकर आ जाने पर, आँख में फूस या तिनका पड़ जाने पर, कठोर वचन कहने पर, वियोग में निशानी साथ रहने पर खटकती है, इसी तरह आत्मा में पाप का शल्य चुभता रहता है। भूल की धूल आत्मा को मलिन बनाती है। एक कहावत है- भूल होना छद्मस्थ मानव की प्रकृति है, भूल को स्वीकार नहीं करना जीवन की विकृति है, भूल को मान लेना संस्कृति है और उसे सुधारना प्रगति है। किसी ने कहा है-

कभी नहीं फिसलने वाला भगवान है, फिसलन को समझने वाला मतिवान है।
फिसलकर संभलने वाला इंसान है, फिसलने को अच्छा मानने वाला शैतान है।।

संक्षेप में भूल या गलती कुछ भी कहा जाय, जीवन की एक विकृति है। छद्मस्थ अवस्था में जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे यह हो जाती है। बाहरी भूलों के तीन रूप आपके सामने रखे जा रहे हैं। विभाग करने पर वे जल्दी समझ में आते हैं और उन्हें पकड़कर सुधार भी किया जा सकता है। तीन रूप हैं- अज्ञानजन्य, आवेशजन्य और योजनाबद्ध।

(१) अज्ञानजन्य भूल- समझ कम है, बुद्धि विकसित नहीं है, उम्र से नादान है और इस नादानी में वह हँसी करने लायक भूल कर बैठता है। उसके मन में अपमानित करना, बदला लेना अथवा स्वार्थ-साधना जैसी कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोवृत्ति नहीं है। नासमझी के कारण वह ऐसा करता है- जैसे नादान बालक पिता की मूँछें खींच लेता है, माता के मुख पर तमाचा मार देता है, नादानी में लात भी मार देता है, ये भूलें वैसे साधारण नहीं हैं, यदि समझदार व्यक्ति करे तो उसे प्रतिकार स्वरूप दण्ड भी दिया जा सकता है। लेकिन नादान शिशु के लिये ऐसा कुछ भी नहीं है। यहाँ तक कि वह गोद में लेने वाले के कीमती वस्त्रों को मलमूत्र से गंदा भी कर देता है, फिर भी वह रोष करने लायक नहीं, क्षमा के योग्य है। उसे पीटने की बजाय दुलारते देखा जा सकता है। कभी अतिवृद्ध, स्थविर और रोग से घिरे हुए लोगों की भूलों पर ध्यान भी नहीं दिया जाता है, कारण है उनके मन में बुराई करना, बदला लेना जैसा कुछ भी नहीं है। समाज में प्रायः ये भूलें क्षम्य मानी गई हैं। धर्म के क्षेत्र में भी इनका कोई महत्त्व नहीं है।

(२) आवेशजन्य भूल- दूसरा विभाग आवेग या आवेश अथवा क्षणिक उत्तेजना का परिणाम है। विपरीत व्यवहार, अघटित घटना एवं संकट के प्रसंग पर कभी सहसा व्यक्ति को कुछ आवेश आ जाता है। स्वाभिमान पर ठेस पहुँचने पर वह कभी भान भूल जाता है, कुछ का कुछ कह बैठता है, कर देता है। गाली देना, मारना, पीटना आदि आवेश में हो जाता है, ''यह भूल नोट करने जैसी है।'' सामाजिक क्षेत्र में इसका अधिक मूल्य तो नहीं है और समझदार प्रायः इस पर ध्यान भी नहीं देते हैं, फिर भी आध्यात्मिक क्षेत्र में यह भूल, क्षमा माँगने, दूसरे का खेद मिटाने और पश्चात्ताप करने योग्य है। जैसे आँख में गिरा हुआ छोटा सा तिनका या रजकण भी खटकता है। पैर में लगा छोटा काँटा भी निकाले बिना गति नहीं मिलती, इसी तरह विवेकवान, समझदार व्यक्तियों को इस आवेग या आवेशजन्य भूल की भी तत्काल क्षमायाचना कर हार्दिक पश्चात्ताप कर लेना चाहिये, जिससे ये भूलें आगे नहीं बढ़ें।

(३) योजनाबद्ध भूल- तीसरा विभाग है योजनाबद्ध संकल्पपूर्वक की जाने वाली भूलों का। ये भूलें करने के साथ दण्ड के क्षेत्र में आती हैं। सामाजिक दृष्टि से हत्या करना, धोखा देना, जालसाजी करना, व्यभिचार, देशद्रोह, आतंक, रिश्वतखोरी, सत्ता का दुरुपयोग, लांछन, कलंक आदि के रूप में यह भूलें क्षम्य नहीं हैं। समाज अथवा व्यवहार क्षेत्र में ऐसा करने वाला कठोर दण्ड का अधिकारी होता है और साधना के क्षेत्र में उग्र प्रायश्चित्त का। कषायजनित ये भूलें भयंकर द्वेष बढ़ाने वाली हैं। एक जन्म नहीं, जन्म-जन्म तक दुःख देने वाली हैं। तन के कैंसर की गाँठ एक जन्म (जीवन) समाप्त करती है, मन के कषाय की गाँठ जन्म-जन्म तक दुःख देती है। राजा-महाराजा, चक्रवर्ती ही नहीं, तीर्थंकर को भी नहीं छोड़ती। गहरा पश्चात्ताप, तीव्र तप और दीर्घकाल का संयम भी कभी-कभी इन भूलों के परिमार्जन में पर्याप्त नहीं होता। बिना भोगे इनसे छुटकारा नहीं है, अतः ऐसी भूलें सम्यग्दृष्टि श्रावक और साधक के जीवन में होती नहीं हैं अथवा इन भूलों के होने पर श्रावकत्व और साधुत्व के भाव नहीं रहते हैं। अनार्यों के जीवन की इन घटनाओं को देखकर सम्यग्दृष्टि श्रावकों, साधुओं से ऐसी भूलें नहीं हो, यही सावधानी 'विवेक' है और 'प्रतिक्रमण' की भूमिका है। मानसिक विचारों में राजर्षि प्रसन्नचन्द्र के ऐसे भाव आने पर कथाभाग में विवरण मिलता है- ''वे नरकों के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दलिक इकट्ठे करने लग गये, ये विचार मानसिक थे, इसलिये गहरे पश्चात्ताप से उन्होंने शुद्धीकरण कर केवलज्ञान उपार्जित कर लिया।'' सामान्य से लेकर विशेष प्रसंगों तक के स्थानांग सूत्र के छठे ठाणे में भगवान् महावीर ने साधु-साध्वी के लिए छः प्रकार के प्रतिक्रमण कहे हैं- ''छव्विहे पडिक्कमणे पण्णत्ते तंजहा''-

१. **उच्चारपडिक्कमणे-** मल विसर्जन के पश्चात् वापस आने पर ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।

२. **पासवणपडिक्कमणे-** मूत्र विसर्जन के पश्चात् वापस आने पर ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।

३. **इत्तरिए पडिक्कमणे-** देवसिय, राइय आदि प्रतिक्रमण करना अथवा भूल हो जाने पर तत्काल मिथ्यादुष्कृत कहकर प्रतिक्रमण करना।

४. **आवकहिए पडिक्कमणे-** मारणान्तिकी संलेखना के समय किया जाने वाला प्रतिक्रमण।

५. **जंकिंचि मिच्छा पडिक्कमणे-** साधारण दोष लगने पर उसकी शुद्धि के लिये 'मिच्छा मि दुक्कडं' कहकर पश्चात्ताप प्रकट करना।

६. **सोमणंतिए पडिक्कमणे-** दुःस्वप्नादि देखने पर किया जाने वाला प्रतिक्रमण।

कर्म आने के पाँच स्थान हैं, अतः प्रतिक्रमण भी पाँच प्रकार का बताया गया है, जिन्हें रूपकों से समझें-

१. **मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण-** इसे समझने के लिए रूपक है- लोहे की ताड़ियों का दरवाजा, जिससे आतंककारी, चोर, पशु, पक्षी, दुश्मनों का प्रवेश बंद हो जाये।

२. **अव्रत का प्रतिक्रमण-** छोटी बड़ी तार की जाली, जिससे मक्खी मच्छर का प्रवेश बंद हो जाये।

३. **प्रमाद का प्रतिक्रमण-** काँच का दरवाजा, जिससे हवा, धूलि, बाहरी शोरगुल बंद हो जाय।

४. **कषाय का प्रतिक्रमण-** लकड़ी का दरवाजा- जिससे बाहर की शक्ल सूरत भी दिखाई नहीं दे।

५. **अशुभयोग का प्रतिक्रमण-** छिद्र रहित सपाट दरवाजा, जिससे अति बारीक रज-धूलि भी प्रविष्ट न हो।

अनुयोगद्वार सूत्र में प्रतिक्रमण के दो भेद किये गये हैं- द्रव्य आवश्यक एवं भाव आवश्यक। यदि आपने याद किया हो तो वे सूत्र इस प्रकार हैं-

''तं आवस्सयमितिपदं सिक्खियं, ठियं, जियं, मियं, परिमियं, नामसमं, घोससमं, अहीणक्खरं, अणच्चक्खरं, अविद्धाक्खरं, अक्खलियं, अमिलियं, अवच्चामेलियं, पडिपुण्णं, पडिपुण्णघोसं, कण्ठोट्ठविमुक्कं, वायणोवगयं दव्वावस्सयं। अणुवओगं।''

द्रव्यावश्यक के विविध रूप हैं, यथा- १. **शिक्षित-** सम्यक् उच्चरित २. **स्थित**-न भूलने से जो मन में याद रहे ३. जित- दूसरे के पूछने पर शीघ्र उत्तर दे सके ४. **मित पद-** जो अक्षरों से मर्यादित है ५. **परिमित-** क्रम-विरुद्ध क्रम से आवृत्ति ६. **नामसम-** शिक्षित आदि पाँचों से युक्त, स्वप्न में भी कह दे ७. **घोषसम-** ह्रस्व, दीर्घ रूप से शुद्ध उच्चारण ८. **अहीनाक्षर-** एक अक्षर भी कम नहीं ९. **अनत्यक्षर-** एक अक्षर भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिक नहीं १०. **अव्याविद्धाक्षर-** उलटे-सुलटे अक्षरों का प्रयोग नहीं। बिखरे रत्नों की तरह नहीं, माला के समान ११. **अस्खलित-** पत्थर आने पर हलवत् रुकता-रुकता नहीं बोले, १२. **अमिलित-** दूसरे समान पदों को, दूसरे शास्त्र के पदों से मिलाना नहीं १३. **अव्यत्यामेडित-** अस्थान में विराम रहित १४. **प्रतिपूर्ण-** अधिक अक्षर, हीनाक्षर न होने से प्रतिपूर्ण १५. **प्रतिपूर्ण घोष-** गुरुवत् उदात्त आदि घोषों से सहित १६. **कण्ठोट्ठ विमुक्कं-** कण्ठ और होठ से बाहर निकला हुआ १७. **वाचनोपगत-** वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, धर्मकथा से पाया हुआ।

इतना होते हुए भी बिना उपयोग के भावशून्य होने के कारण द्रव्य प्रतिक्रमण कहा जाता है।

तो क्या बिना उपयोग के प्रतिक्रमण करने पर लाभ नहीं होता? होता है, बिना पथ्य की औषधि के समान, कम होता है। लेकिन जितनी देर प्रतिक्रमण करेगा, उतने समय तक पापों से विरति रहेगी। इसके साथ द्रव्य भाव का कारण है। पता नहीं कब भावना जग जाय, विरति आ जाय और वैराग्य जगाकर क्षण-पल में पापमल नष्ट कर दे। अतः भावना का प्रयास करें, किन्तु द्रव्य से करना भी छोड़ें नहीं। भावना का अर्थ करते हुए कहा गया है-

''जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविया वा तच्चिते तम्मणे तल्लेस्से तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थइ मणं अकरेमाणे उभओ कालं आवस्सयं करेंति से तं लोगुत्तरियं भावावस्सयं।'' -अनुयोगद्वार सूत्र

'तत् चित्त' से यहाँ चित्त शब्द सामान्य उपयोग के अर्थ में है- अंग्रेजी में इसे Attention (अटेंशन- उसका उपयोग उसमें लगाना) कहा जा सकता है। 'तन्मन' से यहाँ मन शब्द विशेष उपयोग के अर्थ में है, अंग्रेजी में इसे Interest (इन्ट्रेस्ट- रुचि) कहा जा सकता है। 'तल्लेश्या' से यहाँ लेश्या शब्द उपयोग बिशुद्धि के अर्थ में है, अंग्रेजी में इसे Desire (डिजायर-इच्छा) कहा जा सकता है। तदध्यवसाय से यहाँ विशुद्धि का चिह्न भाषित स्वर है अर्थात् जैसा भाव वैसा ही भाषित स्वर है। यह उपयोग की विशुद्धि का सूचक है। जैसा स्वर वैसा ही ध्यान जब होने लगता है, तब उसे तदध्यवसाय कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे Will (विल- आत्मबल/अंतरंगशक्ति या लगन) कहा जा सकता है। वही ध्यान जब तीव्र बन जाता है तब उसे 'तत्तिव्वज्झवसाणे' कहा जाता है, अंग्रेजी शब्द Power of imagination (पावर ऑफ इमेजिनेशन- कल्पना शक्ति) को समकक्ष कहा जा सकता है। 'तदट्ठोवउत्ते' अर्थात् उसी के अर्थ में प्रयुक्त। इसे अंग्रेजी में Visualisation (विजुएलाइजेशन-दृष्टिकोण/दूरदृष्टि) कहा जा सकता है। तत्पश्चात् 'तदप्पियकरणे' अर्थात् जिसमें सभी करण उसी के विषय में अर्पित कर दिये हैं। अंग्रेजी में इसे Identification (आइडेन्टीफिकेशन- उससे साक्षात्कार करना) कहा जा सकता है। अन्त में 'तब्भावणभाविए' अर्थात् उसी की ही भावना से भावित होना जिसे अंग्रेजी में Complete Absorption (कम्पलीट एब्जोर्पशन- सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करना) कहा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित्त भी तप है। आत्मशुद्धि का एक साधन है। जिसे भाई/बहिन कर रहे हैं। आज तीन भाई/बहिनों के २८ की तपस्या है। सबसे मासखमण नहीं किया जा सकता। क्या किया जा सकता है? हरपल जागृत रहकर गलती का पश्चात्ताप। पश्चात्ताप चालू हो जायेगा तो गलती होना बंद हो जायेगा। पाप की स्वीकृति ही प्रतिक्रमण है। मैं गलती कर रहा हूँ, इसे स्वीकार कर लोगे तो यह प्रतिक्रमण है। जब तक मन में ये भाव रहेंगे- मैं बड़ा हूँ, मैं क्यों जाऊँ खमाने, खमायेगा तो वह। जब तक हमने गलती मानी ही नहीं तो वह छूटेगी कैसे? और छूटी ही नहीं तो वही ८४ का चक्कर मौजूद है।

पश्चात्ताप कीजिये और वह हर समय किया जा सकता है। प्रथम एवं अन्तिम तीर्थंकर के समय उभयकाल प्रतिक्रमण और बीच के २२ तीर्थंकरों के समय जब दोष, तभी प्रतिक्रमण। व्यवहार जगत में अभी बाह्य शुद्धि तत्काल की जाती है, भीतरी शुद्धि का कोई लक्ष्य नहीं है। कँवर साहब का वस्त्र पान से खराब हो जाए तो तुरन्त वस्त्र बदलते हैं। शुद्धि हेतु मानो- बहनों के यहाँ की बिन्दी वहाँ लग जाए तो दर्पण में देखकर सही स्थान पर करती हैं। किसी पक्षी की बींट आदि कपड़े पर, बालों पर गिर गई तो पहले घर जाकर वस्त्र परिवर्तन एवं सफाई। बाहर में कहीं अशुद्धि रह जाय तो तत्काल शुद्धि। जब भी बाहरी गंदगी तभी शुद्धि और अन्तरंग कषाय संबंधी गलती होने पर सोचते हैं- सायंकाल प्रतिक्रमण के बाद क्षमायाचना कर लेंगे। अभी क्या जल्दी है, पाक्षिक प्रतिक्रमण में क्षमायाचना कर लेंगे। वह भी टाल देंगे फिर चातुर्मासिक प्रतिक्रमण की बात करेंगे। फिर सोचेंगे साल भर में एक बार संवत्सरी आती है उस दिन साथ-साथ क्षमायाचना कर लेंगे, उस दिन भी खमतखामणा करते समय हाथ सामने एवं मुँह बगल में करके अनमनेपन से क्षमायाचना करते हैं। लेकिन भाई क्षमायाचना करना शूली की वेदना शूल में समाप्त करना है। कितनी ही बड़ी गलती हो, प्रायश्चित्त से समाप्त एवं पश्चात्ताप से शुद्ध हो सकती है। पर होवे कैसे? वह भाव से हो तब।

दृढ़प्रहरी ४ मोटी हत्या करके आए- गौ, ब्राह्मण, प्रमदा एवं बालक की हत्याएँ करके आये, परन्तु पश्चात्ताप की आग में जलने लगे। उपशम, संवर, विवेक के द्वारा अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त कर लिया-

गौ, ब्राह्मण, प्रमदा, बालक की, मोटी हत्या चारों।
तेहणो करणहार प्रभु भजने, होत हत्या सूँ न्यारो।।
पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उद्धारण हारो.....

इसलिये तीर्थंकर भगवान् महावीर ने दोनों समय प्रतिक्रमण की बात कही। प्रतिक्रमण में भाई जोर-जोर से 'तस्स मिच्छामि दुक्कड़' देते हैं, पर भीतर में जूँ भी नहीं रेंगती। प्रकृति में अन्तर नहीं आया है, पर बाहर में जोर-जोर से मिच्छामि दुक्कड़ं। मेरा कहने का तात्पर्य है- खमतखामणा मात्र बोलने तक सीमित न हो।

पश्चात्ताप के रूप में प्रतिक्रमण किया जाए तो आत्मशुद्धि होते देर नहीं लगेगी। यदि भावना की प्रकृष्टता में प्रतिक्रमण कर रहा है और उत्कृष्ट रसायन आ जावे तो जीव तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन कर सकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, इससे बढ़कर और कौनसा पद है? वह कैसे मिल सकता है- अनशन तप नहीं कर सकते तो प्रतिक्रमण रूप सरल रास्ता तीर्थंकर भगवान् ने बताया। यदि फिर भी थे नहीं तिरो, तो थांकी मरजी। फिर भी अगर पत्थर की नाव में बैठकर डूबना चाहते हो तो भगवान् के पास भी कोई उपाय नहीं।

संसार की तरणी में मोहमाया में डूबना चाहते हो तो भगवान के पास कोई....।

जब विभाव में जाओ, स्वभाव में आओ, तत्काल प्रायश्चित्त करो, प्रतिक्रमण करो...

आगे का मार्ग प्रशस्त कर आत्मा से परमात्मा...

नर से नारायण.......बन सकोगे.....

व्यवहार जगत में प्रचलित भूल, दूसरों को कष्ट या पीड़ा देना, हानि पहुँचाना, अपमानित करना या जीवन रहित करना, माना जा रहा है और इसी भूल की धूल का मिच्छा मि दुक्कडं, क्षमायाचना, पश्चात्ताप किया जाता है, जबकि शास्त्र में ५ प्रकार का प्रतिक्रमण बताया गया है- मिथ्यात्व से हटकर वास्तविक सही श्रद्धा में दृढ़ आस्था होना, यदि इसमें कोई अतिक्रम, व्यतिक्रम लगा हो तो मिथ्या दुष्कृत देकर श्रद्धा दृढ़ बनाना। अव्रत-मर्यादा रहित जीवन से हटकर अप्रत्याख्यानावरण कषाय को छोड़कर एक से लेकर बारह व्रत स्वीकार करना। देशविरति एवं सम्पूर्ण पापों का परित्याग कर सर्वविरति रूप चारित्र स्वीकार करना। मैं क्यों नहीं कर रहा? कितना कर सकता हूँ? कहाँ अटक रहे हैं? कहाँ भटक रहे हैं? नौ दिन चले अढाई कोस! वाली कहावत तो चरितार्थ नहीं हो रही है; चिन्तन करना, पुरुषार्थ करना। पाँच प्रकार के प्रमाद छोड़कर अप्रमत्त बनना। काषायिक मलिन भावों से ऊपर उठकर राग-द्वेष रहित वीतराग बनना तथा सम्पूर्ण योगों का निरोध कर अयोगी बनना।

इस भाव प्रतिक्रमण की ओर किन्हीं महापुरुषों का ही ध्यान जाता है। आचार्य आषाढ़भूति ने अन्तिम समय में अपने शिष्यों को संलेखना संथारा करवाया और कहा- देव बनने पर यहाँ आकर कहना। नहीं आने पर श्रद्धा डावांडोल हुई। बच्चों की विराधना कर, आभूषण लेकर, गृहस्थ में जाने की भावना बना ली, देव के आकर कहने पर संभले और फिर से श्रद्धा में मजबूती की। मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण हुआ।

राजकुमार मेघ तीर्थंकर भगवान् महावीर की देशना से दीक्षित हुए। शयन का स्थान दरवाजे पर मिला। पूर्व के राजकुमार के रूप के सम्मान का खयाल आया और निद्रा नहीं आने पर विचार बदला और प्रातःकाल रजोहरण आदि उपकरण भगवान् महावीर को संभलाने गये। पूर्व जन्म का दृष्टान्त सुनने के बाद व्रतों में स्थिरता आई और अपने को संतों के चरणों में समर्पित कर दिया, फिर से महाव्रत स्वीकार किये। अव्रत का प्रतिक्रमण हुआ।

गणधर गौतम के चरणों में श्रावक आनन्द ने वंदन नमस्कार के बाद पृच्छा की। क्या भगवन्! श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है? हाँ- आनन्द! हो सकता है। भगवन् मुझे भी इतना अवधिज्ञान हुआ है। आनन्द- इतना अवधिज्ञान नहीं हो सकता। उपयोग नहीं लगाने से गणधर गौतम स्वामी ने ऐसा कह दिया। पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर के समक्ष आलोचना करने पर श्रावक को इतना अवधिज्ञान हो सकता है- ऐसा कहने पर बेले का पारणा करने के बजाय अपने अनुपयोग का प्रायश्चित्त करने हेतु वे आनन्द से क्षमायाचना करने पहुँचे और प्रमाद की शुद्धि के बाद पारणा किया।

पूर्व स्नेह के कारण गुफा में महासती राजीमती को यथाजात (नग्न) देखकर महाश्रमण रथनेमि ने भोगों का निमंत्रण किया, पर राजीमती के सुभाषित वचन सुनकर अपने विकार दूर कर केवलज्ञानी बन गये। मैं बड़ा हूँ, पूर्व में दीक्षित हूँ, लघु भ्राताओं को वन्दन करने कैसे जाऊँ? इस अहंकार में बाहुबली एक वर्ष तक कठोर साधना करते रहे। आखिर महासती ब्राह्मी, सुन्दरी से हाथी से उतरने की बात सुनकर अहम् हटाकर विनम्र भाव से ज्यों ही कदम बढ़ाया, कषाय का प्रतिक्रमण होने से केवलज्ञान हो गया।

इसी तरह इतनी ऋद्धि के साथ मेरी तरह ठाट-बाट से भगवान् को वन्दन करने कौन गया होगा, ऐसा दशार्णभद्र को अहम् भाव आया। किन्तु देवेन्द्र की ऋद्धि देखकर, आत्म-विकास में बाधक, अहम् हटा और महाराज दशार्णभद्र ने दीक्षा ग्रहण कर ली।

इस तरह स्व-आत्म विकास में बाधक मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय से हटकर अपनी आत्मा को इन विभावों से हटाकर, स्वभाव में लाना, बाहर से हटकर अन्तर्मुखी बनना भाव प्रतिक्रमण है और यही प्रतिक्रमण कर्मो की धूल को झाड़कर आत्मा को परमात्मा बनाता है, इसी को करने की आवश्यकता है। जो करेंगे, वे तिरेंगे, इन्हीं भावनाओं के साथ.....

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org